करता है; दृढ़ता और मेहनत के जोर के साथ आशाओं-उम्मीदों के संसार का सृजन करता है; थॉमस नेल नीतशे के हवाले से बताता है, ''हम (भाव प्रवासी) बेघर हैं'' पर हम ''भविष्य की संतान'' हैं; यानी मेहनत-मशक्कत करके प्रवासी अपने भविष्य को मजबूत, अर्थवान और शक्तिशाली बना लेते हैं। कनाडा, इंग्लैंड और अन्य देशों में पंजाबियों ने यह करिश्मा किया है।

एक तरफ कनाडा और अन्य विदेशी धरतियों का तिलिस्म है, दूसरी ओर पंजाबी व्यक्ति अपनी धरती के साथ जुड़े रहने के लिए तड़प रहा है; एक तरफ आर्थिक मजबूरी है, दूसरी तरफ वह शालीनता, सामाजिकता और भावनात्मकता के कारण अपनी भूमि के मोह में जकड़ा हुआ है। वह बेचैन है; उसकी आत्मा तड़प रही है, पर वह अपनी भूमि छोड़ने के लिए मजबूर है; वह अपने आप के साथ हिंसा कर रहा है। उसका शरीर कनाडा-अमेरिका में रहता है, पर उसकी आत्मा पंजाब के गांव व शहरों की सीमाओं में भटकती है; अपनी जन्मभूमि के मोहपाश में जकड़े हुए वह एक बंटी हुई जिंदगी जीता है; वह जानता है कि यह उसकी होनी है; रोजगार प्राप्त करने और सिर ऊंचा उठा कर मान-सम्मान की जिंदगी जीने के लिए उसको पंजाब छोड़ना पड़ेगा।

रोजगार/काम मनुष्य के होने की विशिष्टता है। कवि पाश ने लिखा था, ''कम्म जो आदमी दियां नसां विच वहिंदा है/ जिउन दी कंबनी बण... कम्म इक बलद है धरती दे हेठला/ कम्म अकाश है लिशकदा होया।'' (पंजाब की धरती पर काम/रोजगार की कमी और राज्य-प्रबंध में हुए पतन के कारण पंजाबी अपनी भूमि छोड़कर ''चमकते आसमानों'' की तरफ जा रहा है। पंजाब के राजनीतिक वर्ग को बहुत सहृदयता के साथ इस गंभीर संकट के बारे में सोचने और ऐसी योजना बनाने की जरूरत है जिसके साथ पंजाबी का पंजाब के भविष्य पर यकीन फिर से बन सके। इस बारे में बातें करनी आसान है, परंतु यह बहुत जटिल और मुश्किल भरा काम है। प्रवास के केंद्र दोआबे में जन्म लेने वाले शायर मुनीर नियाज़ी का कथन है, ''कम्म ओहो मुनीर सी मुश्किलां दा/ जिहडा शुरू'च बहुत आसान दिसिया।'' ■

साभार: *पंजाबी ट्रिब्यून*

पंजाबी से अनुवाद: **वंदना सुखीजा**

हाशिये पर मुसलमान और आरक्षण का सवाल

शेख मोईन नईम

सरकार चाहे केंद्र की हो या राज्य की, दोनों ही सरकारों ने मुस्लिम आरक्षण एवं विकास के मामले में हमेशा ठंडा रवैया कायम रखा है। स्वतंत्रता के बाद से ही मुस्लिम आरक्षण समय की मांग और आवश्यकता थी और आज भी मुसलमानों के शैक्षणिक एवं राजनीतिक विकास के लिए आरक्षण जरूरी है। सरकारी नौकरियों के क्षेत्र में मुसलमानों के नगण्य प्रतिनिधित्व के नकारात्मक प्रभावों से मुस्लिम समुदाय की रक्षा और इस चित्र को बदलने के लिए मुस्लिम आरक्षण समय की मांग है। यह बात भी सही है कि आरक्षण मुसलमानों की समस्यायों का मुकम्मल समाधान नहीं है, लेकिन आरक्षण से मिलने वाली सुविधाओं और आरक्षित सीटों पर चुनाव लड़ने के रास्ते के साफ होने के लाभों को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता, जो कि मुसलमानों की हर क्षेत्र में मौजूद दुर्दशा में सुधार के लिए रामबाण उपाय अथवा मील का पत्थर सिद्ध हो सकते हैं।

इरतिका के सभी रास्ते बंद पहले किए जाएंगे
बाद में सारी पसमांदगी हम से मंसूब की जाएगी''

-नईम अख्तर खादमी

भारत आबादी और क्षेत्रफल की दृष्टि से एक बड़ा देश है। भारत के कोने-कोने में मुसलमान बसते हैं। मुसलमान भारत का अटूट अंग हैं। मुसलमानों की अपनी भाषा, संस्कृति और जीवन शैली है। इसके बावजूद मुसलमानों को भारत में हमेशा नजर अंदाज किया गया। मुसलमानों को कदम-कदम पर भेदभाव का शिकार होना पड़ता है और भारत में तो सामाजिक भेदभाव का सदियों पुराना इतिहास रहा है। मुसलमान आजादी के बाद से लेकर आज तक पिछड़ेपन का शिकार रहे हैं। आजादी के बाद से लेकर आज तक देश के दूसरे नंबर के बहुसंख्य समुदाय की राजनीतिक भागीदारी एवं सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक परिस्थिति बड़ी चिंताजनक रही है। आज अगर इस समुदाय को शिक्षा, रोजगार एवं राजनीतिक क्षेत्र में आरक्षण दिया जाए, तो यह समुदाय मुख्यधारा में आ सकता है, जो कि संसाधनों के अभाव में इन क्षेत्रों में मुख्यधारा से बहुत दूर है। प्रस्तुत लेख में मुसलमानों की भारत और महाराष्ट्र में राजनीतिक भागीदारी के साथ-साथ वर्तमान परिस्थितियों का जायजा लिया गया है।

अल्पसंख्यक का अर्थ

भारत में मुसलमानों का समावेश अल्पसंख्यकों में होता है। विभिन्न राजनीतिक विशेषज्ञों ने अल्पसंख्यकों की विभिन्न व्याख्याएं की हैं। सुभाष सी. कश्यप और विश्वप्रसाद गुप्त के अनुसार,

''अल्पसंख्यक मतलब बहुमत के विरुद्ध मतदान करने वाली छोटी संख्या अथवा भाग। किसी देश या जनसमुदाय में लोगों का अल्पसंख्यक वर्ग। वह जनसमुदाय जो संख्या में अपेक्षाकृत कम हो परंतु जिस की अपनी भाषागत, धार्मिक, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक अथवा जातिगत विशेषताएं हों और वे उन का संरक्षण चाहते हों।''

मुस्लिम आबादी

देश में मुसलमानों की राजनीतिक भागीदारी एवं वर्तमान स्थिति को समझने के लिए मुसलमानों की जनसंख्या की जानकारी होना बेहद आवश्यक है, ताकि हमें पता चल सके कि भारत में बसने वाली आबादी का कितना प्रतिशत इस समुदाय से आता है एवं उनकी समस्याएं क्या हैं? भारत की जनगणना 2011 के जनगणना आयुक्त सी. चंद्रमौली द्वारा राष्ट्र-राज्य को समर्पित भारत की 15वीं राष्ट्रीय जनगणना की थी। अंतिम जारी प्रतिवेदन के

अनुसार, भारत की आबादी 2011 में 01,21,01,93,422 थी। 2011 की जनगणना के लिए कुल 27 लाख अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने 7000 नगरों, कस्बों और 6 लाख गावों के परिवारों के यहां पधार कर आंकड़े जुटाए। इस काम में कुल 22 अरब रुपए खर्च हुए थे। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या 01,21,01,93,422 थी। इनमें मुसलमानों की संख्या 17.22 करोड़ मतलब कुल जनसंख्या का 14.23 प्रतिशत थी। वहीं, दूसरी तरफ 2011 की जनगणना के अनुसार महाराष्ट्र की कुल आबादी 11,23,72,972 यानी देश की कुल जनसंख्या का 9.29 प्रतिशत थी। इस में मुसलामनों की कुल संख्या 01,29,71,152 यानी राज्य की कुल आबादी का 11.54 प्रतिशत थी। इसे निम्नलिखित सारणी से समझा जा सकता है।

समुदाय	महाराष्ट्र	भारत
हिंदू	79.83%	79.80%
मुसलमान	11.54%	14.23%
ईसाई	0.96%	02.30%
सिख	0.20%	01.72%
बौद्ध	05.81%	0.70%
जैन	01.25%	0.37%
अन्य धर्मीय	0.16%	0.66%
धर्म न बताने वाले	0.25%	0.24%

स्रोत : जनगणना 2011

मुसलमान और साक्षरता

अगर हम शिक्षा के क्षेत्र की बात करें, तो इस क्षेत्र में मुसलमान बाकी सभी समुदायों से काफी पीछे हैं। चाहें फिर हम भारत की बात करें या महाराष्ट्र की। मुसलमान अन्य समुदायों से शिक्षा के मामले में बहुत पीछे हैं। इसके कई कारण हैं, जिनमें मुख्य कारण हैं संसाधनों का अभाव। संसाधनों के अभाव के कारण मुस्लिम छात्र एवं छात्राएं अपनी पढ़ाई मुकम्मल नहीं कर पाते और बीच में ही शिक्षा अधूरी छोड़कर कमाने के लिए निकल जाते हैं। आज अगर हम बाल मजदूरी की बात करें, तो इसमें मुस्लिम बच्चों की संख्या काफी चिंताजनक है जो छोटे-मोटे काम करके अपनी आजीविका के लिए संघर्ष करते नजर आते हैं। दूसरा बड़ा कारण है आरक्षण। आरक्षण नहीं होने के कारण मुसलमानों को आरक्षित वर्गों से अधिक फीस चुकानी पड़ती है जो चुकाने में अधिकांश मुस्लिम परिवार सक्षम नहीं होते। इसका परिणाम यह होता है कि या तो वे शिक्षा को बीच में ही छोड़ देते हैं या न चाहते हुए भी अन्य कोर्सेज में प्रवेश लेने पर मजबूर हो जाते हैं। यहां एक पहलू छात्रवृत्ति का भी है। मुस्लिम छात्र एवं छात्राओं को आवश्यकता के अनुरूप छात्रवृत्ति नहीं मिल पाती या जहां मिलती भी है तो वह समय पर नहीं मिलती। तीसरा मुख्य कारण वह सोच है जो भेदभाव एवं शासक दल की विचारधारा और उसके खुले-आम प्रचार के कारण मुसलमानों में पनप रही है कि पढ़ाई मुकम्मल होने के बाद भी मुसलमानों को नौकरियां नहीं मिलती। इस सोच को पूरी तरह से स्वीकारा नहीं जा सकता, मगर पूरी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता, क्योंकि ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने मौजूद हैं कि केवल धर्म विशेष के अनुयायी होने के कारण उन्हें नौकरी नहीं दी जाती या घर किराए पर नहीं दिया जाता। ऐसे कई कारण हैं जिसकी वजह से मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में बाकी समुदायों से पिछड़े हुए हैं। इसे निम्नलिखित सारणी द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

समुदाय	साक्षरता दर	पुरुष	महिला	अंतर
कुल	72.9%	80.9%	64.6%	16.2%
हिंदू	73.3%	81.7%	64.3%	17.4%
मुस्लिम	68.5%	74.7%	62%	12.7%
ईसाई	84.5%	87.7%	81.5%	6.2%
सिख	75.5%	80%	70.3%	9.7%
बौद्ध	81.3%	88.3%	74%	14.3%
जैन	94.9%	96.8%	92.9%	3.9%

स्रोत : भारत की जनगणना, धार्मिक समुदायों का डेटा

रोजगार के क्षेत्र में मुसलमान

यदि हम रोजगार की बात करें तो इस क्षेत्र में भी मुसलमानों की दुर्दशा नजर आती है। रोजगार के मामले में भी मुसलमान अन्य समुदायों से पिछड़े हुए नजर आते हैं। रोजगार का कोई भी क्षेत्र हो, वहां मुसलमानों की भागीदारी बेहद चिंताजनक है। फिर चाहे वह कृषि क्षेत्र हो, उद्योग हो, पारंपारिक अथवा आधुनिक सेवाओं का क्षेत्र हो या फिर चाहे संगठित या असंगठित सेवाओं का क्षेत्र हो। हर क्षेत्र में मुसलमान अन्य समुदायों से पिछड़े हुए हैं। आइए, निम्नलिखित सारणी से इसे समझते हैं। उपरोक्त सारणी से हम अंदाजा लगा सकते हैं कि कैसे मुस्लिम समुदाय भारत में रोजगार के क्षेत्र में अपनी आजीविका के लिए संघर्ष करता है और क्यों छोटे-मोटे काम करने पर मजबूर है। रोजगार के हर क्षेत्र में आज मुसलमान अनुसूचित जाति एवं जनजातियों से भी अधिक पिछड़ा हुआ है। उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि आज भारत में मुसलमानों के हालात अनुसूचित जाति एवं जनजातियों से भी बदतर हैं। इन हालात को बदलने में आरक्षण महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अगर हम सार्वजनिक सेवाओं में मुसलमानों की भागीदारी की बात करें तो यहां भी निराशा ही हाथ लगती है, क्योंकि सार्वजनिक सेवाओं में भी मुसलमानों की भागीदारी नगण्य ही है। स्वास्थ्य विभाग में मुसलमानों की संख्या केवल 4.5 प्रतिशत है, जबकि न्यायालयीन सेवाओं में मुसलमानों की भागीदारी 7.8 प्रतिशत, प्रशासकीय सेवाओं में 3 प्रतिशत, पुलिस विभाग में 4 प्रतिशत, विदेश सेवाओं में 1.8 प्रतिशत, शिक्षा के क्षेत्र में 6.5 प्रतिशत, रेलवे सेवाओं में 4.5 प्रतिशत, गृह विभाग में 7.3 प्रतिशत मुसलमानों की भागीदारी है, जबकि आबादी में यही भागीदारी 14.23 प्रतिशत है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि रोजगार एवं सार्वजनिक सेवाओं में आज भी मुसलमान आबादी के अनुपात में भागीदारी से वंचित हैं। आइए, इसे निम्नलिखित सारणी से समझते हैं।

क्षेत्र	मुस्लिम भागीदारी
स्वास्थ्य विभाग	4.5%
न्यायालयीन सेवाएं	7.8%
प्रशासकीय सेवाएं	3%
पुलिस विभाग	4%
विदेश सेवाएं	1.8%
शिक्षण क्षेत्र	6.5%
रेलवे सेवाएं	4.5%
गृह विभाग	7.3%

स्रोत : राष्ट्रीय सेंपल सर्वे (एनएसएस)

भारतीय राजनीति में मुसलमान

अगर मुसलमानों की राजनीतिक भागीदारी की बात की जाए तो और भी ज्यादा निराशाजनक

आंकड़े सामने आते हैं। भारत की संसद में मुस्लिम सांसदों का प्रतिनिधित्व आजादी के बाद से लेकर आज तक कभी भी 10 प्रतिशत से अधिक नहीं रहा। मुस्लिम सांसदों की सबसे अधिक संख्या (49 सांसद) 1980 की 7वीं लोकसभा में थी जो की कुल सीटों का 9.26 प्रतिशत थी। यदि 1951-2019 तक की 17 लोकसभा में मुस्लिम प्रतिनिधित्व की बात की जाए तो आजादी के बाद से आज तक मुसलमानों का प्रतिनिधित्व संसद में आबादी के अनुपात में नहीं रहा, जो चिंताजनक है। एक वह समय था जब भाजपा को अल्पसंख्यकों से संबंधित विचारों के कारण राजनीति में अछूत समझा जाता था और कोई भी राजनीतिक दल (अपवाद छोड़ कर) उसके साथ गठबंधन करने या उसे समर्थन देने के लिए राजी नहीं था। यही कारण था कि अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार केवल एक मत से गिर गई थी। इस घटना से व्यथित होकर वरिष्ठ पत्रकार बलबीर पुंज ने कहा था कि, ''देश में कौन सा दल सत्ता में आएगा ये मुस्लिम निश्चित करते हैं।'' धीरे-धीरे देश के राजनीतिक हालात बदलते गए। फिर साल 2004 आया और कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी। कांग्रेस के नेतृत्व वाली इस सरकार को वामपंथी दलों का भी समर्थन प्राप्त था और इस समर्थन ने बलबीर पुंज के इस भ्रम को और मजबूती प्रदान की। यह स्थिति 10 सालों तक बनी रही। देश का राजनीतिक चित्र तेजी से बदलने लगा था और अब भाजपा की धुरी आई अमित शाह और नरेंद्र मोदी के हाथों में। इस जोड़ी ने इस भ्रम को तोड़ा। इस जोड़ी ने देश की राजनीति को एक नया फॉर्मूला दिया। इस फॉर्मूले के अनुसार अब सरकार बनाने या सत्ता प्राप्त करने के लिए मुस्लिम मतों की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस फॉर्मूले के तहत भारत में मुसलमानों को राजनीतिक तौर पर अछूत बनाया जा रहा है। लेखक के इस दावे की दलील है, मुसलमानों के प्रति विश्व के सबसे बड़े राजनीतिक दल होने का दावा करने वाली भाजपा का रवैया। अब न मुसलमानों की बात होती है, न उन्हें टिकट दिए जाते हैं और न सत्ता में भागीदारी। मोदी और शाह की जोड़ी ने मुस्लिम मतों के बिना भी सत्ता प्राप्ति का फॉर्मूला ढूंढ निकाला है जिसकी कीमत देश अपने सांप्रदायिक सौहार्द और सहिष्णुता की बलि देकर चुका रहा है। लोकसभा में अनुसूचित जाति (एससी) के लिए 84 और अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए 47 सीटें आरक्षित हैं जो कि प्रतिनिधित्व का क्रमशः 15 एवं 7.5 प्रतिशत हैं। आजादी के बाद से आज तक लोकसभा में मुस्लिम प्रतिनिधित्व को निम्नलिखित सारणी द्वारा समझा जा सकता है।

लोकसभा	वर्ष	मुस्लिम सांसद	कुल सीटें	प्रतिनिधित्व	आबादी
1	1952	21	489	4.29%	9.9%
2	1957	24	489	4.90%	9.9%
3	1962	23	494	4.65%	10.7%
4	1967	29	520	5.57%	10.7%
5	1971	30	518	5.79%	11.2%
6	1977	34	542	6.27%	11.2%
7	1980	49	529	9.26%	11.2%
8	1984	46	514	8.94%	11.4%
9	1989	33	529	6.23%	11.4%
10	1991	28	521	5.37%	12.1%
11	1996	28	543	5.15%	12.1%
12	1998	29	543	5.34%	12.1%
13	1999	32	543	5.89%	12.1%
14	2004	36	543	6.62%	13.4%
15	2009	30	543	5.52%	13.4%
16	2014	23	543	4.23%	14.2%
17	2019	27	543	4.57%	14.2%

स्रोत : लोकनीति-सीएसडीएस

2021 इतिहास के उन अस्वाभाविक पलों में से हैं जब राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, सशस्त्र बलों के प्रमुख, सुरक्षा और खुफिया एजेंसियों, निर्वाचन आयोग या न्यायपालिका में किसी भी अहम पद पर कोई भी मुस्लिम नहीं है। मोदी सरकार का यह छठा साल है और इस सरकार में इस समय केवल एक मुस्लिम मंत्री हैं मुख्तार अब्बास नकवी [और 2022 में नकवी भी मंत्री नहीं रहे]। देश के 37 राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों में केवल दो मुस्लिम राज्यपाल हैं। नजमा हेपतुल्लाह एवं मोहम्मद आरीफ खान। जबकि इन 37 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में एक भी मुस्लिम मुख्यमंत्री नहीं है।

अगर भारत के राज्यों की राजनीति में मुसलमानों की सत्ता में भागीदारी की बात की जाए तो भारत के 15 राज्य ऐसे हैं जहां कोई भी मुस्लिम मंत्री नहीं हैं। यह 15 राज्य हैं, असम, अरुणाचल प्रदेश, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नगालैंड, ओडिशा, सिक्किम, त्रिपुरा और उत्तराखंड। भारत के 10 राज्य ऐसे हैं जहां केवल एक एक मुस्लिम मंत्री हैं। इन 10 राज्यों में आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश और दिल्ली शामिल हैं। जबकि महाराष्ट्र में 4, केरल में 2 और सब से अधिक पश्चिम बंगाल में 7 मुस्लिम मंत्री हैं।

महाराष्ट्र की राजनीति में मुसलमान

अगर महाराष्ट्र में मुसलमानों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं हिस्सेदारी की बात की जाए तो महाराष्ट्र के गठन से लेकर आज तक मुसलमानों की सत्ता में भागीदारी के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। आज तक महाराष्ट्र की विधानसभा में जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व के लिए मुसलमान संघर्ष करते हुए नजर आते हैं। यही वह राज्य है जिसने भेदभाव के विरुद्ध कई आंदोलन देखे और समानता की स्थापना के लिए कई आंदोलनों का गवाह बना। आइए, निम्नलिखित सारणी द्वारा इस राज्य की विधानसभा में मुस्लिम प्रतिनिधित्व का जायजा लेते हैं जो कि, कभी भी आबादी के अनुपात में नहीं रहा।

विधानसभा	वर्ष	मुस्लिम विधायक	कुल सीटें	प्रतिनिधित्व
1	1962	11	264	4.16%
2	1967	09	270	3.33%
3	1972	13	270	4.81%
4	1978	11	288	3.81%
5	1980	13	288	4.51%
6	1985	10	288	3.47%
7	1990	07	288	2.43%
8	1995	08	288	2.77%
9	1999	13	288	4.51%
10	2004	11	288	3.81%
11	2009	11	288	3.81%
12	2014	09	288	3.12%
13	2019	10	288	3.47%

फिलहाल महाराष्ट्र की विधानसभा की 288 सीटों में से 29 सीटें अनुसूचित जाति (एससी) और 25 सीटें अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए आरक्षित हैं।

महाराष्ट्र की स्थानिक स्वराज्य संस्थाएं और मुसलमान

अगर हम महाराष्ट्र के स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं में मुसलामनों की भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व की बात करें, तो यहां भी निराशा ही हाथ लगती है। महाराष्ट्र में 26 महानगर पालिकाएं, 230 नगर परिषदें, 104 नगर पंचायतें, 34 जिला परिषदें, 351 पंचायत समितियां और 27,709 ग्राम पंचायतें हैं। इन स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं की कुल संख्या 28,454 बनती है। इन 28,454 संस्थाओं में कुल 2 लाख 10 हजार 747 सीटें हैं। इन 2,10,747 सीटों में से 27,397 सीटें अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित हैं, जिनमें से 50 प्रतिशत सीटें मतलब 13,698 सीटें इसी वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। वहीं, 14,752 सीटें अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए आरक्षित हैं जिनमें से 50 प्रतिशत अर्थात 7376 सीटें इसी वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। जबकि इन 2,10,747 सीटों में से 40,041 सीटें अन्य अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लिए आरक्षित हैं, जिनमें से 50 प्रतिशत अर्थात 20,020 सीटें इसी वर्ग से आने वाली महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। इन आरक्षित सीटों पर मुसलमान चुनाव नहीं लड़ सकते। इन आंकड़ों को आसानी से समझने के लिए निम्नलिखित श्रेणी में दर्शाया गया है।

संस्थाएं	कुल संख्या	कुल सीटें
महानगर पालिकाएं	26	2543
नगर परिषदें	230	4796
नगर पंचायतें	104	187
जिला परिषदें	34	1,961
पंचायत समितियां	351	3,922
ग्राम पंचायतें	27,709	1,97,338
कुल	28,454	2,10,747

स्रोत: महाराष्ट्र चुनाव आयोग

उपरोक्त आंकड़ों से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व एवं भागीदारी का अंदाजा लगाया जा सकता है। ऐसा नहीं हैं कि, यह मुसलमानों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक दुर्दशा को बयान करने वाली पहली रिपोर्ट या पहला अध्ययन है। मुसलमानों की आर्थिक एवं शैक्षणिक परिस्थिति जानने के लिए आजादी के पहले से लेकर आज तक कई आयोग एवं समितियां गठित की गई। इन सब आयोगों एवं समीतियों के अध्ययन में जो बात समान रूप से निकल कर सामने आई वह यह थी कि, भारत में मुसलमान हर क्षेत्र में अन्य समुदायों से पीछे हैं। रंगनाथ मिश्र आयोग ने तो मुसलमानों के लिए आरक्षण की भी मांग की थी, परंतु इन सब आयोगों एवं समीतियों के अध्ययन और सिफारिशों को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। समीतियों एवं आयोगों के गठन का यह खेल आजादी के पहले से शुरू हुआ था, जो अब भी जारी है।

मुसलमानों की दुर्दशा जानने के लिए आयोगों का खेल

सबसे पहले 1871 में विलियम विल्सन हंटर का अध्ययन पेश किया गया। इसके बाद 1886 में रॉयल कमीशन की स्थापना की गई। सर सय्यद अहमद खान और काजी शहाबुद्दीन इस आयोग के अन्य सदस्यों में से थे। इस आयोग ने विशेष तौर पर न्यायिक सेवाओं में मुसलमानों की कम भागीदारी पर गहरी चिंता जताई थी। 1912 में इस्लिंग्टन आयोग गठित हुआ। इस आयोग की रिपोर्ट 1917 में प्रकाशित हुई, जिसमें यह बताया गया कि, हिंदुओं की तुलना में मुसलमान 18 में से 13 विभागों में पिछड़े हुए हैं। 1924 में मुद्दीमान आयोग की स्थापना की गई। इस प्रकार मुसलमानों की आर्थिक, शैक्षणिक एवं रोजगार में भागीदारी जानने के लिए और उन्हें उचित स्थान दिलाने हेतु सिफारिशों के लिए आजादी से पहले भी अनेक आयोग एवं समितियां गठित की गई।

आजादी के बाद 1965 में प्रकाशित एक दस्तावेज में इंदर मल्होत्रा ने रोजगार के क्षेत्र में मुसलमानों के घटते प्रतिनिधित्व पर गहरा दु:ख व्यक्त किया था। 1968 में अमेरिकी पत्रकार जोसफ लेलीवेल्ड ने भी इस स्थिति के लिए मुसलमानों के गिरते मनोबल और देश में उनके साथ हो रहे खुले भेदभाव को जिम्मेदार ठहराया था। 10 मई, 1980 को इंदिरा गांधी की सरकार द्वारा गोपाल सिंह आयोग की स्थापना की गई। उस समय आयोग के कार्य पर 57.77 लाख रुपए खर्च हुए थे। 10 जून, 1983 को आयोग ने सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी थी। सरकार ने इस रिपोर्ट को दबाने का हर संभव प्रयास किया, परंतु गोपाल सिंह के निधन के पश्चात दु:ख और अल्पसंख्यकों के क्रोध के वातावरण में सरकार ने मजबूरन इस रिपोर्ट को 24 अगस्त, 1990 को लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत तो किया, परंतु तत्कालीन सरकार ने आयोग की सभी महत्वपूर्ण सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया। 1989 में सुरेंद्र नवलखा का प्रसिद्ध अध्ययन भी प्रकाशित हुआ। फिर 2005 में मनमोहन सिंह सरकार द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहे जस्टिस राजिंदर सच्चर की अध्यक्षता में देश के मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दशा जानने के लिए एक समिती गठित की, जिसने अपनी रिपोर्ट 30 नवंबर,

2006 को तत्कालीन सरकार को सौंपी। इस अध्ययन के सामने आने के बाद पहली बार पता चला कि देश में मुसलमानों की दशा अनुसूचित जाति (एससी) एवं जनजाति (एसटी) से भी बदतर और खराब हैं। द्य इस समिति की रिपोर्ट भारतीय मुसलमानों के आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक हालात का आइना है। इस रिपोर्ट के आने के 15 सालों बाद भी देश के मुसलमानों के हालात में कोई खास बदलाव नहीं आया, मगर इतना जरूर हुआ कि इस रिपोर्ट के आने के बाद मुख्यधारा के तबके में मुसलमानों के पिछड़ेपन और विकास के मुद्दों पर खुल कर बात होने लगी है। इस रिपोर्ट ने मुसलमानों के आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास के नजरिए और संवाद में काफी हद तक तब्दीली लाई है। 'सच्चर की सिफारिशें' नामक पुस्तक के लेखक अब्दुल रहमान अपनी इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना में लिखते हैं कि, ''तथ्य कभी पुराने नहीं होते। विशेषकर जब तक उन्हें सुधारा न जाए या बेहतर तथ्यों या परिणामों से बदल न दिया जाए।'' यही बात सच्चर समिति की रिपोर्ट पर भी लागू होती है। इसके पश्चात 2007 में रंगनाथ मिश्र आयोग का गठन किया गया, जिसका हाल आप सब जानते ही हैं। इसके अलावा विभिन्न राज्यों में भी इस मकसद के तहत समय-समय पर विभिन्न आयोग एवं समितियों का गठन किया जाता रहा है। उपरोक्त आंकड़ों की रौशनी में यह बात चमकते हुए सूरज की मानिंद बिल्कुल साफ हो जाती है कि, आज मुसलमान अन्य समुदायों के मुकाबले हर क्षेत्र में काफी पिछड़े हुए हैं। रोजगार, शिक्षा एवं राजनीतिक क्षेत्रों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कभी भी आबादी के अनुपात में नहीं रहा। आज भारत में मुसलमानों की हालत दलित एवं आदिवासियों से भी बदतर है। ऐसे हालात में मुसलमानों को मुख्यधारा में लाने के लिए आरक्षण एक बेहतरीन उपाय है। आरक्षण से एक लाभ यह होगा कि, शिक्षा, राजनीति एवं रोजगार के क्षेत्र में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो जाएगा।

आरक्षण और मुसलमान

भारत में आरक्षण एक संवेदनशील विषय रहा है। पिछले कुछ दशकों में आरक्षण का मुद्दा सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से बहुत संवेदनशील बन चुका है। भारत में आरक्षण पर राजनीति के एक लंबे दौर के हम गवाह हैं। भारत ने आरक्षण के लिए आंदोलनों का एक लंबा दौर देखा है। आरक्षण के लिए अलग-अलग राज्यों में आरक्षण के लिए आंदोलन होते रहे हैं, जिनमें राजस्थान में गुर्जरों का, हरियाणा में जाटों का, गुजरात में पाटीदारों का और महाराष्ट्र में मुसलमानों एवं मराठों के आंदोलन मुख्य आंदोलनों में शामिल हैं।

आरक्षण का अर्थ

आरक्षण (रिजर्वेशन) का अर्थ है अपनी जगह सुरक्षित करना। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा हर स्थान पर अपनी जगह सुरक्षित या सुनिश्चित करने या रखने की होती है, चाहे फिर वह रेल के डिब्बे या बस में यात्रा करने के लिए हो या किसी अस्पताल में अपनी चिकित्सा कराने के लिए, किसी संस्था में शिक्षा प्राप्त करने के लिए हो या फिर विधानसभा या लोकसभा का चुनाव लड़ने की बात हो या किसी सरकारी विभाग में नौकरी पाने की। अर्थात आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षणिक क्षेत्र में आज हर नागरिक अपना स्थान सुनिश्चित करना चाहता है और अपना स्थान पहले ही सुनिश्चित करने का नाम आरक्षण है।

भारत में आरक्षण का इतिहास

भारत में आरक्षण की बहस एवं शुरुआत आजादी के बहुत पहले से हो चुकी थी। आज आरक्षण का जो मॉडल भारत में है यह मॉडल कई चरणों में विकसित हुआ है। आइए, इन चरणों पर बात करते हैं।

-भारत में आरक्षण की शुरुआत 1882 में हंटर आयोग के गठन के साथ हुई थी। उस समय विख्यात समाज सुधारक महात्मा ज्योतिराव फुले ने सभी के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा तथा अंग्रेज सरकार की नौकरियों में आनुपातिक आरक्षण/प्रतिनिधित्व की मांग की थी।

-1891 के आरंभ में त्रावणकोर के सामंती रियासत में सार्वजनिक सेवा में योग्य मूल निवासियों की अनदेखी करके विदेशियों को भर्ती करने के खिलाफ प्रदर्शन के साथ सरकारी नौकरियों में आरक्षण के लिए मांग की गई।

-1901 में महाराष्ट्र के सामंती रियासत कोल्हापुर में शाहू महाराज द्वारा आरक्षण की शुरुआत की गई। यह अधिसूचना भारत में दलित वर्गों के कल्याण के लिए आरक्षण उपलब्ध कराने वाला पहला सरकारी आदेश है।

-1908 में अंग्रेजों द्वारा बहुत सारी जातियों और समुदायों के पक्ष में (प्रशासन में जिनका थोड़ा-बहुत हिस्सा था, के लिए) आरक्षण शुरू किया गया।

-1909 और 1919 के भारत सरकार अधिनियम में आरक्षण का प्रावधान किया गया।

-1921 में मद्रास प्रेसीडेंसी ने जातिगत सरकारी आज्ञापत्र जारी किया, जिसमें गैर-ब्राह्मणों के लिए 44 प्रतिशत, ब्राह्मणों के लिए 16 प्रतिशत, मुसलमानों के लिए 16 प्रतिशत, भारतीय-एंग्लो/ईसाइयों के लिए 16 प्रतिशत और अनुसूचित जातियों के लिए 8 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई थी।

-1935 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया, (जो पूना समझौता कहलाता है) जिसमें दलित वर्ग के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग की गई थी।

-1935 के भारत सरकार अधिनियम में आरक्षण का प्रावधान किया गया था।

-1942 में बी. आर. आंबेडकर ने अनुसूचित जातियों की उन्नति के समर्थन के लिए अखिल भारतीय दलित वर्ग महासंघ की स्थापना की। उन्होंने सरकारी सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण की मांग की।

-1946 के कैबिनेट मिशन प्रस्ताव में अन्य कई सिफारिशों के साथ आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव दिया गया था।

-26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ। भारतीय संविधान में सभी नागरिकों के लिए समान अवसर प्रदान करते हुए सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की उन्नति के लिए संविधान में विशेष धाराएं रखी गई हैं। इसके अलावा 10 वर्षों के लिए उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र आवंटित किए गए थे। (हर दस साल के बाद सांविधानिक संशोधन के जरिये इन्हें बढ़ा दिया जाता है)।

-1953 में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति का मूल्यांकन करने के

लिए कालेलकर आयोग का गठन किया गया था। इस आयोग के द्वारा सौंपी गई अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों से संबंधित रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया, लेकिन अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लिए की गई सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया गया।

-1979 में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए मंडल आयोग की स्थापना की गई थी। इस आयोग के पास अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के बारे में कोई सटीक आंकड़ा नहीं था और इस आयोग ने ओबीसी की 52 प्रतिशत आबादी का मूल्यांकन करने के लिए 1930 की जनगणना के आंकड़े का इस्तेमाल करते हुए पिछड़े वर्ग के रूप में 1,257 समुदायों का वर्गीकरण किया था।

-1980 में मंडल आयोग ने एक रिपोर्ट पेश की और तत्कालीन कोटा में बदलाव करते हुए इसे 22 प्रतिशत से बढ़ाकर 49.5 प्रतिशत करने की सिफारिश की। 2006 तक पिछड़ी जातियों की सूची में जातियों की संख्या 2297 तक पहुंच गई, जो मंडल आयोग द्वारा तैयार समुदाय सूची में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

-1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा सरकारी नौकरियों में लागू किया गया। छात्र संगठनों ने इसके विरोध में राष्ट्रव्यापी प्रदर्शन शुरू किया और दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र राजीव गोस्वामी ने आत्मदाह की कोशिश की थी।

-1991 में नरसिम्हा राव सरकार ने अलग से अगड़ी जातियों में गरीबों के लिए 10 प्रतिशथ आरक्षण की शुरुआत की।

-1992 में इंदिरा साहनी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण को सही ठहराया।

-1995 में संसद ने 77वें सांविधानिक संशोधन द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की तरक्की के लिए आरक्षण का समर्थन करते हुए अनुच्छेद 16(4)(ए) का गठन किया। बाद में आगे भी 85वें संशोधन द्वारा इसमें पदोन्नति में वरिष्ठता को शामिल किया गया था।

-12 अगस्त, 2005 को उच्चतम न्यायालय ने पी.ए. इनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में सात जजों द्वारा सर्वसम्मति से फैसला सुनाते हुए घोषित किया कि राज्य पेशेवर कॉलेजों समेत सहायता प्राप्त कॉलेजों में अपनी आरक्षण नीति को अल्पसंख्यक और गैर-अल्पसंख्यक पर नहीं थोप सकता है। लेकिन इसी साल निजी शिक्षण संस्थानों में पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए आरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए 93वां सांविधानिक संशोधन लाया गया। इसने अगस्त, 2005 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को प्रभावी रूप से उलट दिया।

-2006 से केंद्रीय सरकार के शैक्षिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण शुरू हुआ।

-10 अप्रैल, 2008 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारी धन से पोषित संस्थानों में 27 प्रतिशत ओबीसी कोटा शुरू करने के लिए सरकारी कदम को सही ठहराया। इसके अलावा न्यायालय ने स्पष्ट किया कि 'क्रीमीलेयर' को आरक्षण नीति के दायरे से बाहर रखा जाना चाहिए।

-वर्ष 2019 में 103वें संविधान संशोधन के माध्यम से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 और अनुच्छेद 16 में संशोधन किया गया। संशोधन के माध्यम से भारतीय संविधान में अनुच्छेद 15 (6) और अनुच्छेद 16 (6) सम्मिलित किया, ताकि अनारक्षित वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण का लाभ प्रदान किया सके।

आरक्षण और भारतीय संविधान

भारतीय संविधान में आरक्षण से संबंधित स्पष्ट प्रावधान मौजूद हैं। भारत में आरक्षण को संवैधानिक दर्जा, संरक्षण एवं आधार प्राप्त है। संविधान के भाग तीन में समानता के अधिकार की भावना निहित है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 15 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति के साथ जाति, प्रजाति, लिंग, धर्म या जन्म के स्थान पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 15(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है तो वह सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।

-अनुच्छेद 16 में अवसरों की समानता की बात कही गई है। अनुच्छेद 16(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है कि सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उनके लिए पदों को आरक्षित कर सकता है।

-अनुच्छेद 330 के तहत संसद और 332 में राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित की गई हैं।

आरक्षण की आवश्यकता

अब इस के बाद किसी के मन में यह सवाल उपस्थित हो सकता है कि आरक्षण की आवश्यकता क्या हैं? अथवा आरक्षण क्यों दिया जाता हैं? भारत में सदियों तक कुछ जातियां सामाजिक भेदभाव का शिकार रहीं। वे शिक्षा एवं पसंदीदा व्यवसाय जैसे अधिकारों से भी वंचित थीं। इस व्यवस्था के चलते ये जातियां विकास और मुख्यधारा से बहुत दूर थीं। भारत में आरक्षण का उद्देश्य केंद्र और राज्य में सरकारी नौकरियों, कल्याणकारी योजनाओं, चुनाव और शिक्षा के क्षेत्र में इन पिछड़े वर्गों की हिस्सेदारी को सुनिश्चित करना था, ताकि समाज के पिछड़े वर्गों को आगे आने एवं मुख्यधारा में शामिल होने का अवसर प्रदान किया जा सके। भारत में सरकारी सेवाओं और संस्थानों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं रखने वाले पिछड़े समुदायों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए भारत सरकार ने सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों की इकाइयों और धार्मिक/भाषाई अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों को छोड़कर सभी सार्वजनिक तथा निजी शैक्षिक संस्थानों में पदों तथा सीटों के प्रतिशत को आरक्षित करने के लिए कोटा प्रणाली लागू की है। भारत के संसद में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व के लिए भी आरक्षण नीति को विस्तारित किया गया है।

भारत में आरक्षण का मॉडल

संविधान सभा के समक्ष जब यह मुद्दा उठा कि, आरक्षण किसे दिया जाए तो उस समय गहन विचार-विमर्श के बाद कुछ जातियों को अनुसूचित जातियों में शामिल करके उन के लिए 15 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। वहीं, दूसरी तरफ कुछ जातियों का समावेश अनुसूचित जनजातियों में करके

उनके लिए 7.5 प्रतिशत आरक्षण का प्रबंध किया गया। शुरुआत में यह आरक्षण केवल 10 वर्षों के लिए था, परंतु हर बार इसे 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया, इस आरक्षण की इस बार की समय सीमा 2026 में समाप्त होने वाली है। शुरुआत में अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लिए आरक्षण का प्रावधान नहीं था। मोरारजी देसाई सरकार ने मंडल कमीशन का गठन किया परंतु कई सालों तक इस आयोग की रिपोर्ट एवं सिफारिशें ठंडे बस्ते में रहीं, मगर वी.पी. सिंह की सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू कर अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया जिसे उच्चतम न्यायलय ने वैध करार दिया। इसके बाद 2019 में मोदी सरकार ने आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए 10 प्रतिशत का प्रावधान किया और आज के समय में आरक्षण की मर्यादा 49.5 प्रतिशत से बढ़ कर 59.5 प्रतिशत हो गई। बाकी 49.5 प्रतिशत जगह सामान्य वर्ग के लिए है जो कि आरक्षित वर्गों से आने वाले उम्मीदवारों के लिए भी खुली हैं। आइए, आरक्षण के इन आंकड़ों को निम्नलिखित आंकड़ों से समझने का प्रयास करते हैं।

वर्ग	आरक्षण
अनुसूचित जाति	15%
अनुसूचित जनजाति	7.5%
अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)	27%
आर्थिक पिछड़ा वर्ग (ईडब्ल्यूएस)	10%
कुल	59.5%

स्रोत : भारत सरकार

महाराष्ट्र में आरक्षण का मॉडल

वहीं, दूसरी तरफ महाराष्ट्र में आरक्षण की सीमा 52 प्रतिशत है, जबकि 16 प्रतिशत मराठा आरक्षण का मुद्दा न्यायलय में सुनवाई के लिए विचाराधीन है। महाराष्ट्र में इस 52 प्रतिशत के विभिन्न वर्गों में विभाजन को निम्नलिखित चार्ट से समझा जा सकता है।

इस प्रकार महाराष्ट्र में कुल 52 प्रतिशत आरक्षण है, यदि उच्चतम न्यायलय मराठा आरक्षण को हरी झंडी दिखा देता है तो यह आरक्षण 52 से बढ़ कर 68 प्रतिशत हो जाएगा।

क्या धर्म के आधार पर आरक्षण नहीं दिया जा सकता ?

उपरोक्त आंकड़े मुसलमानों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक हालात को बयान करते हैं। ये आंकड़े भारत में मुसलमानों की दुर्दशा की केवल झलक मात्र है। इन आंकड़ों से साफ जाहिर है कि, आज मुसलमान हर क्षेत्र में अन्य समुदायों से पिछड़े हुए हैं और अनुसूचित जाति एवं जनजातियों से बदतर हालात में जिंदगी गुजार रहे हैं। यदि मुसलमानों को मुख्यधारा में लाना है या विकास की धारा से जोड़ना है तो नि:संदेह इसमें आरक्षण एक अहम भूमिका अदा कर सकता है। अब यहां एक दिक्कत यह है कि, जब भी मुस्लिम आरक्षण की बात की जाती है तो कई लोग यह तर्क देते हैं कि भारत में धर्म के आधार पर आरक्षण नहीं दिया जा सकता, जबकि तथ्य कुछ और ही बयान करते हैं।

अनुसूचित जातियों में अभी तक हिंदू, सिख और बौद्ध भी शामिल हैं। हालांकि, अनुसूचित जाति आदेश 1950 के पैरा 3 में शुरू में लिखा गया था कि, ''ऐसा कोई व्यक्ति अनुसूचित जाति में शामिल नहीं होगा जो हिंदू धर्म से इतर किसी और धर्म को मानता हो।'' फिर बाद में सिखों की मांग पर 1955 में इसमें हिंदू शब्द के साथ सिख शब्द जोड़ा गया और 1990 में नवबौद्ध शब्द जोड़ कर बौद्ध धर्म अपनाने वाले दलितों को भी अनुसूचित जाति के आरक्षण का लाभ देने का रास्ता साफ कर दिया गया। 1996 में नरसिम्हा राव सरकार ने एक अध्यादेश के माध्यम से ईसाई धर्म अपनाने वाले दलितों को भी अनुसूचित जातियों में शामिल करने की कोशिश की थी, मगर भाजपा के तीखे तेवर एवं विरोध के चलते इस अध्यादेश को ठंडे बस्ते में डालना पड़ा। तब से आज तक दलित ईसाई एवं वे मुसलमान जिनके पूर्वज कभी दलित हुआ करते थे, खुद को इस वर्ग में शामिल करने के लिए आंदोलन एवं मांगों के माध्यम से सरकारों पर दबाव बनाने का प्रयास कर रहे हैं। उपरोक्त संदर्भ में यदि बात की जाए तो भारत में बहुत हद तक आरक्षण का आधार धर्म ही रहा है। यह तथ्य उन लोगों की आंखें खोलने के लिए काफी है जो धर्म को मुस्लिम आरक्षण की राह में बाधा मानते हैं। खैर... मुसलमानों एवं ईसाइयों के इन आंदोलनों का ही नतीजा था कि, केंद्र सरकार ने 2007 में रंगनाथ मिश्र आयोग को इस मसले पर विचार कर के सिफारिश करने का जिम्मा सौंपा था। जस्टिस रंगनाथ मिश्र ने अपनी रिपोर्ट में साफ लिखा हैं कि, धर्म के आधार पर मुसलमानों एवं ईसाइयों को आरक्षण से वंचित रखना संविधान के खिलाफ हैं।'' जस्टिस रंगनाथ मिश्र ने यह भी कहा है कि, ''संविधान में संशोधन किए बगैर ही ईसाई और इस्लाम धर्म अपनाने वाले दलितों को भी अनुसूचित जातियों में शामिल किया जा सकता है।'' रंगनाथ मिश्र आयोग की सिफारिशों पर अनुसूचित जाति आयोग भी अपनी मुहर लगा चुका है। यदि रंगनाथ मिश्र आयोग की सिफारिशों को मान लिया जाता है तो अनुसूचित जातियों को मिलने वाली तमाम सुविधाएं बेहद गरीब तबके के मुसलमानों को भी मिलने लगेगी। लोकसभा की 79 और देश भर की विधानसभाओं की 1050 से अधिक सीटों पर चुनाव लड़ने का रास्ता भी साफ हो जाएगा जो अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित हैं। इस चर्चा से यह बात भी साफ हो जाती है कि धर्म मुस्लिम आरक्षण की राह में बाधा नहीं है।

उपरोक्त विवेचन से साफ स्पष्ट है कि सरकार चाहे केंद्र की हो या राज्य की, दोनों ही सरकारों ने मुस्लिम आरक्षण एवं विकास के मामले में हमेशा अपना ठंडा रवैया कायम रखा है। स्वतंत्रता के पश्चात से ही मुस्लिम आरक्षण समय की मांग और आवश्यकता थी और आज भी मुसलमानों के शैक्षणिक एवं राजनीतिक विकास के लिए आरक्षण जरूरी है। सरकारी नौकरियों के क्षेत्र में मुसलमानों के नगण्य प्रतिनिधित्व के नकारात्मक प्रभावों से मुस्लिम समुदाय की रक्षा और इस चित्र को बदलने के लिए मुस्लिम आरक्षण समय की मांग है। लेखक इस बात से भी सहमत है कि आरक्षण मुसलमानों की समस्यायों का मुकम्मल समाधान नहीं हैं परंतु आरक्षण से मिलने वाली सुविधाओं और आरक्षित सीटों पर चुनाव लड़ने के रास्ते के साफ होने के लाभों को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता, जो कि मुसलमानों की हर क्षेत्र में मौजूद दुर्दशा में सुधार के लिए रामबाण उपाय अथवा मील का पत्थर सिद्ध हो सकते हैं। फिलहाल इस शेर पर कलम रोक रहा हूं कि,

''वक्त कम हैं...जितना हैं जोर लगा दो
कुछ को मैं जगाऊं कुछ को तुम जगा दो'' ■